

---

## इकाई 4 पंचांग के भेद

---

### इकाई की संरचना

- 4.0 उद्देश्य
- 4.1 प्रस्तावना
- 4.2 पंचांग के भेद
  - 4.3.1 पंचांग भेद के कारण
  - 4.3.2 पंचांग के दृश्य तथा अदृश्य पक्ष
- 4.4 दृक्प्रत्ययद नवीन पंचांग
  - 4.4.1 सायन पंचांग एवं राष्ट्रीय पंचांग
- 4.5 सारांश
- 4.6 पारिभाषिक शब्दावली
- 4.7 बोध प्रश्न/निबन्धात्मक प्रश्न
- 4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ
- 4.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

---

### 4.0 उद्देश्य

---

इस इकाई लेखन के निम्नलिखित उद्देश्य हैं—

- पंचांग के भेद को समझ सकेंगे।
- पंचांग भेद के मुख्य कारण से अवगत हो जायेंगे।
- प्राचीन और अर्वाचीन पंचांग पद्धति का ज्ञान हो जायेगा।
- विविध प्रकार के पंचांगों के बारे में अध्ययन प्राप्त होगा।
- दृश्यादृश्य विधान पद्धति को स्पष्टतया समझने में समर्थ हो सकेंगे।

---

### 4.1 प्रस्तावना

---

प्रस्तुत एम.ए. ज्योतिष के तृतीय पाठ्यक्रम के प्रथम खण्ड की चौथी इकाई में आपका स्वागत है। इस इकाई का शीर्षक है – पंचांग के भेद। इसके पूर्व की इकाईयों में आपने पंचांग के स्वरूप, संक्षिप्त इतिहास व परम्परा, पंचांग के अंग एवं सिद्धान्तों का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई में पंचांग के भेद से जुड़े विषयों के बारे में अध्ययन करने जा रहे हैं।

भेद का शाब्दिक अर्थ है – अन्तर। पंचांग के भेद से तात्पर्य यह है कि भारतवर्ष में निर्मित होने वाले विभिन्न पंचांगों में प्रयुक्त मान, ग्रहादि मान, लग्नादि मान, मुहूर्त समय, व्रतोत्सव आदि में एकरूपता का अभाव अथवा एक-दूसरे से भिन्नता। भारतीय पंचांगों का क्षेत्र विस्तृत है। भारतीय पंचांग की गणना पद्धति में पाये जाने वाले भेद के कारण देश में अलग-अलग पंचांगों का निर्माण होता आया है। सम्प्रति भारतवर्ष के विभिन्न क्षेत्रों से प्रकाशित होने वाले प्रमुख पंचांगों की संख्या अनुमानतः 300 से भी अधिक हैं। अतः उनमें अन्तर स्वाभाविक है।

विदित हो कि पंचांगों के आधार पर ही समस्त धार्मिक क्रियाओं एवं अनुष्ठानों का सम्पादन होता है। अतः इसका सम्बन्ध धार्मिक भावनाओं से भी जुड़ा हुआ है। कुछ विद्वान अपनी पारम्परिक पद्धति (सौर, आर्य एवं ब्राह्म पक्षादि) के अनुसार ही पंचांगों का निर्माण करना चाहते हैं तथा कुछ विद्वान आधुनिकतम विधियों (नाटिकल अल्मनाक) के अनुसार साधित ग्रहों के आधार पर पंचांग बनाना चाहते हैं। आधुनिक पद्धति को दृश्य गणित कहते हैं तथा इस पद्धति से निर्मित पंचांग को दृश्य पंचांग कहते हैं। मुख्य रूप से इन्हीं दो मानकों के आधार पर सभी पंचांग निर्मित हो रहे हैं। जितने भी दृश्य कार्य हैं उनका साधन दृश्य पद्धति से ही होना चाहिए तभी गणितागत एवं वेधोपलब्ध परिणामों में साम्य हो सकेगा अथवा नहीं। यह ध्रुव सत्य है कि सृष्टि के प्रत्येक तत्व में साम्यता नहीं हो सकती, सभी में कुछ न कुछ अन्तर अवश्य ही रहता है। प्राणीमात्र में भेद ईश्वरीय सृष्टि है, वहाँ भी एकरूपता का प्रश्न ही नहीं है। पंचांग के सन्दर्भ में भी केवल शास्त्रीय मीमांसा की जा सकती है। पंचांग निर्माण की एक विधा है और इसमें कई कारणों से भेद होना स्वाभाविक है।

आइए हम सभी उन पंचांग के भेद के बारे में विस्तृत अध्ययन करते हैं तथा उसके विभिन्न आयामों को भी जानने का प्रयास करते हैं।

## 4.2 पंचांग के भेद

संसार के सभी व्यावहारिक या पारमार्थिक कार्य कालाधीन होते हैं और कालबोधक एकमात्र 'ज्योतिष शास्त्र' है। ज्योतिषशास्त्र का अंगीभूत 'पंचांग' निर्माण का मुख्य प्रयोजन भी है – कालज्ञान। काल ज्ञानार्थ ही भारत में सर्वत्र पंचांग बनता है जिसके आधार पर तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करण और स्पष्टग्रह—राश्यादि के ज्ञान होते हैं। पूर्व में सिद्धान्त ग्रन्थानुसार पंचांग का निर्माण होता था। बाद में तन्त्र और करण ग्रन्थ के अनुसार सुलभ प्रकार द्वारा पंचांग बनना आरम्भ हुआ। सृष्टि के प्रारम्भ से इष्ट समय तक का अहर्गण वश ग्रह साधन की प्रक्रिया जिसमें हो, उसे 'सिद्धान्त' कहा गया है। कलियुगादि से इष्टकाल पर्यन्त का अहर्गणवश ग्रहज्ञान की विधि जिसमें हो, उसे 'तन्त्र' कहते हैं और इष्टशकाब्द द्वारा अहर्गणवश ग्रहसाधन विधि जिसमें हो उसे 'करण' ग्रन्थ कहा जाता है। त्रिस्कन्ध ज्योतिष के सिद्धान्त स्कन्ध में सर्वमान्य भगवान् सूर्य द्वारा प्रतिपादित सूर्यसिद्धान्त (सूर्याश पुरुष एवं दानवराज मय का परस्पर संवाद रूपी आर्ष ग्रन्थ) नामक ग्रन्थ है जिसका गणित अन्य सिद्धान्त की अपेक्षा सूक्ष्म माना गया है जो 'आदित्यसिद्धान्त भवे च सूक्ष्मम्' तथा वराहमिहिर के 'स्पष्टतरः सावित्रः' उक्ति से स्पष्ट है। इसलिए सूर्यसिद्धान्त को सर्वस्वीकृत सिद्धान्त भी कहा गया है। आज इसी सिद्धान्त के आधार पर सौर पंचांग का निर्माण किया जा रहा है।

जहाँ तक पंचांग भेद का प्रश्न है तो उदाहरण के लिए यदि हम देखें तो एक पिता के चार पुत्रों में ही साम्यता नहीं होती— कोई गोरा, कोई काला, कोई विद्वान, कोई मूर्ख, कोई लम्बा, कोई सामान्य कद का हो जाता है जबकि सभी पुत्रों में एक ही पिता के अंश है फिर भी ऐसा क्यों होता है? यह विचारणीय है।

अब पंचांग के भी भेद का यहाँ शास्त्रीय विवेचन करते हैं कि – उनमें भेद क्यों होता है? कैसे होता है? भेद के कारण क्या हैं? क्या भेद होना स्वाभाविक है? भेद का निराकरण क्या है? आदि आदि।

आपको यह ज्ञात हो चुका है कि पंचांग निर्माण की प्रक्रिया प्राचीनकाल से ही चली आ रही है। अतः उसके आरम्भिक काल से लेकर आज तक सहस्रों वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। इस प्रकार काल की एक लम्बी अवधि अन्तराल में कालान्तर जन्य अन्तर

होना स्वाभाविक है। इसीलिए समय-समय पर विविध कालखण्डों में उस समय के तत्कालीन ऋषियों-आचार्यों द्वारा पंचांग में गणित और वेधादि का प्रयोग माध्यम से 'अपेक्षितसंस्कार' करके पंचांग को कालानुरोधने शास्त्रशुद्ध करने की परम्परा थी। इस दिशा में अध्ययनोपरान्त आचार्यों की एक लम्बी परम्परा दिखलाई पड़ती है। यथा -

ब्रह्माचार्य वशिष्ठकश्यपमुखैर्यत्खेटकर्मादितं ।  
 तत्तत्कालजमेव तथ्यमथतभूरिक्षणेऽभूच्छ्लथम् ॥  
 प्रयातोऽथमहासुरः कृतयुगान्तेऽर्कात्स्फुटम् ।  
 तच्चास्ति स्म कलौ तु सान्तरमथा भूच्चारु पाराशरम् ॥  
 तच्चछास्त्रं किल दुर्गसिंहमिहिराद्यैस्तन्निबद्धं स्फुटं ।  
 तच्चाभूच्छथिलं तु विष्णुतनयेनाकारि वेधात्स्फुटम् ॥  
 ब्रह्मोक्त्याऽऽश्रितमे तदप्यथ बहौ काले भवत्सान्तरम् ।

ब्रह्माचार्य से लेकर वशिष्ठ, कश्यप, सूर्य, मय, आर्यभट, वराहमिहिर, भास्कर, दुर्गसिंह, विष्णुतनय, मकरन्द, केशव, गणेश, सुधाकर, मुरलीधर ठाकुर, सामन्तचन्द्रशेखर पर्यन्त अनेकों आचार्यों की परम्परा की बात कही गई है। आप सभी ने अपने-अपने कालखण्ड में पंचांग में उत्पन्न भेद को यथासंभव शुद्ध करने का प्रयास किया। अनेक समालोचकों ने यह माना है कि हमारे सूर्यादि पराशरान्त या ब्रह्मादि पराशरान्त या व्यासान्त जो 18 या 19 प्रवर्तक ज्योतिषशास्त्र के प्रवर्तक महर्षि थे, उनके मूल ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं है। उन ऋषि प्रवर्तकों के नाम पर उनके उपलब्ध वचन प्रमाणों के आधार पर स्व-स्व सामयिक क्षमता के आधार पर परवर्तिकाल में बने सिद्धान्तों को ही हम प्राचीन सिद्धान्त मान रहे हैं। क्योंकि वेधपरम्परा से बार-बार समागत अन्तर दूर करने की प्रथा वराहमिहिर तक प्रचलित थी। ऋषि प्रणीत श्रुतिसम्मत पद्धति के अनुसार कालजन्य परिवर्तन जानकर अन्तर निकाल कर शुद्ध करने की पद्धति वराहमिहिर के बाद छूटती गई। वैदिक कालविधायक त्रिस्कन्ध ज्योतिष में वेध और गणितीय सत्यापन का क्रम का मूल महाभारत काल के बाद कैसे महाकाश से केवल सौरमण्डल तक सीमित रह गया, इसका प्रमाण वराह के 'पंचसिद्धान्तिका' नामक ग्रन्थ में आप देख सकते हैं।

पंचांग निर्माण के प्राचीन तीन पक्षों का उल्लेख गणेश दैवज्ञ ने ग्रहलाघव में किया है - सौरपक्ष, आर्यपक्ष एवं ब्राह्म पक्ष। सौरपक्ष के नाम से सूर्यांश पुरुष मयासुर संवाद रूप सूर्यसिद्धान्त के रूप में, ब्राह्मपक्ष के नाम पर ब्रह्मगुप्त ब्रह्मस्फुट, आर्षपद्धति के नाम पर प्रथमआर्यभट ने आर्यभट्टीयम्, ये तीन प्राचीन पक्ष सामने आये हैं। एक सौरपक्ष पंचसिद्धान्तिका का भी है, जो प्राचीन पाँच सिद्धान्तों का वराहकृत करणग्रन्थात्मक संकलन है। आज सौरपक्ष जिसके मूल स्वरूप का प्रवर्तन कृतान्त (सत्ययुगान्त) के अल्पावशेष से 1933 शकाब्द गत वर्ष 2165023 सौरवर्षों का एक लम्बे अन्तराल पर कोई समीक्षक विश्वास नहीं करता। लेकिन यह भी सत्य है कि इनमें वर्षों की सूक्ष्म गणना के लिए आज अत्याधुनिक नासा का साफ्टवेयर भी पर्याप्त नहीं है।

गणितीय रीति से पंचांग में भेद का सबसे बड़ा कारण चन्द्रमा की तीव्र गति है। सूर्य एवं चन्द्रमा से ही का साधन होता है। चन्द्रमा की तीव्र गति के कारण उसके साधन में कठिनाई होती है। सबसे ज्यादा अन्तर वहीं दिखलाई पड़ता है। इसलिए आज दृक्सिद्ध पंचांग बनाने वाले 'सेक्स्टंट यन्त्र' के द्वारा चन्द्रमा का वेध करके उसकी गति का साधन करते हैं। सैद्धान्तिक रीति से तिथि का मान 60 घटी होता है किन्तु सूर्य-चन्द्रमा के गत्यन्तर से यह मान बढ़ता-घटता रहता है। तिथि साधन में

‘बाणवृद्धि रसक्षयः’ के स्थान पर आज ‘सप्तवृद्धि दशक्षयः’ की बात होती है। इसी प्रकार अन्य अंगों में भी कुछ न कुछ भेद होता ही है।

### 4.3.1 पंचांग भेद के कारण

शास्त्रीय एवं गणितीय दृष्टिकोण से प्रायोगिक आधार पर पंचांग भेद के निम्नलिखित कारण हैं –

1. **कालान्तर जन्य** – पंचांग निर्माण के आरम्भिक काल से आज तक के काल में सहस्रों वर्षों का कालखण्ड व्यतीत हो जाने से कालान्तरजन्य अन्तर स्वाभाविक है। पंचांग में कालान्तर संस्कार सर्वत्र अपेक्षित है। हमारे सभी ग्रन्थ अपने निर्माण काल में सूक्ष्म थे तथा सर्वाभिप्राय से सूक्ष्मता के पक्षधर भी रहे हैं। यदि दृश्यस्थिति को गोलीयगणित से सूक्ष्मसूत्रों के प्रयोग से मापित कर सकते हैं तभी दृग्गणितैक्यता संभव है। समस्त आकाशीय पिण्ड परिणामित होकर चन्द्रकक्षा में फिर स्वक्षितिज में दिग्भेद से दृश्य होते हैं। त्रिप्रश्नादि उदयास्तान्त या पातान्त खगोलीय दृश्यादृश्य चमत्कार दर्शक विधान निष्कर्षात्मक हैं। इसलिए हमारे सिद्धान्त दो खण्ड में बँटे हैं। कालान्तर जन्य अन्तर को ही ‘बीजसंस्कार’ के नाम से भी जाना जाता है।
2. **पंचांग निर्माण पद्धति जन्य** – पंचांग निर्माण की विभिन्न पद्धतियों को अपनाने से भी पंचांगों में एकरूपता का अभाव अर्थात् भेद उत्पन्न होता है। यह प्रायः पंचांगों में दिखलाई पड़ता है।
3. **सिद्धान्त ग्रन्थों का बदलता स्वरूप** – यदि एक ही ग्रन्थ सार्वकालिक हो जाता तो नये-नये सिद्धान्त ग्रन्थ या सैद्धान्तिक पद्धति सिद्धान्ततः ठीक रहने पर भी विभिन्न मानों के बदलते रहने से करण ग्रन्थों के केवल स्वरूप ही नहीं बदलते जाते, अपितु मान बदलने पर सूत्रगत निष्पत्ति भी बदलती जाती है। ग्रहों की कक्षा में जो सूक्ष्म अन्तर समय के साथ पड़ता जाता है, कालान्तर में उसे प्राचीन वेधसिद्ध मानों से मिलाने पर अन्तर दृष्टिगोचर होना स्वाभाविक है। अन्तरोपलब्धि जब तक कम रहता है, वेध एवं कालान्तर बीज से दृक्प्रत्यय प्राप्त करते जाते हैं। बहुत अन्तर हो जाने पर सिद्धान्त शोधन एवं नवीन करणग्रन्थ की आवश्यकता पड़ती है। कुछ कालान्तर से नये करण ग्रन्थ बनते रहने का यह मूल रहस्य है।
4. **करण ग्रन्थों का बदलता स्वरूप** – पंचसिद्धान्तिका, खण्डखाद्य, भास्वती, करणकुतूहल, ग्रहलाघव, मकरन्द सारिणी, सिद्धान्तदर्पण आदि सौर, आर्य एवं ब्राह्म परम्परा के करण विधान ग्रन्थ हैं। केतकरीय तथा सर्वानन्दकरण तथा नवीन अल्मनाक तक प्राचीन एवं नवीन समिन्वत पद्धति के करण ग्रन्थ भी हैं। यह जानना जरूरी है कि करण ग्रन्थ उसे कहते हैं जो किसी व्यवस्थित वर्ष को आधार वर्ष मानकर वर्षारम्भकालिक क्षेपक एवं सभी तात्कालिक मान प्रमाण के आधार पर बनाया जाता है। ध्रुवीय ध्रुवकों के बदलने से सायनान्तर एवं कदम्बीय भोग परिवर्तन से नक्षत्रों की स्वगतिजन्य स्थानान्तर की निष्पत्ति से क्षेपक एवं ध्रुवक तात्कालिक मान प्रमाण से सम्बद्ध होते हैं। अतः ग्रहों में कम या अधिक अन्तर वेध से निश्चित करके उसे वार्षिक बीज में बदलकर बीजसंस्कार से ग्रहों की वास्तविक स्थिति तथा गति के क्षेपक तथा ध्रुवक से युक्त कर सुगमरीति से ग्रहगणितीय पद्धति से नवीन करणग्रन्थ बनाना एक निदान है। परिवर्तन की नैसर्गिकता में विचारणीय है कि दृश्य चमत्कारों से दृग्गणितैक्य नहीं लाया जाता तो इतने सिद्धान्त तथा करण ग्रन्थ बार-बार नहीं बनाये जाते। नवीन पद्धति से बने करणग्रन्थ भी कालगति से अन्तरित हो रहे हैं।

5. **सारिणी भेद**— वर्तमान में पंचांग निर्माण के लिए अलग-अलग कई प्रकार के सारिणीयों का प्रयोग होता है। इसके फलस्वरूप उसके गणितीय विधान में अन्तर आ जाता है और भेद उत्पन्न होता है। जिससे फलादेशादि कर्तव्य में भी अन्तर होना स्वाभाविक है।
6. **वेधजन्य** — वेधप्रक्रिया को नहीं अपनाने से वेधजन्य अन्तर होना निश्चित है। ऐसी परिस्थिति में दृक्सिद्ध की कल्पना नहीं की जा सकती। जबकि वेधपरम्परा के महत्व को आर्यभट से लेकर सिद्धान्तदर्पणकर्ता सामन्तचन्द्रशेखर तथा मुरलीधरठाकुर पर्यन्त सभी आचार्यों ने बतलाया है।
7. **अयन गति** — अयन गति के कारण सायन पंचांगों में भी प्रतिवर्ष अयनान्तर तथा कालान्तर गति संस्कार की परम्परा चली है। आकाश में राशियों एवं नक्षत्रों के प्रारम्भिक बिन्दु तथा शरद सम्पात का अन्तर 'अयनांश' कहलाता है। यह अन्तर एक निश्चित बिन्दु से और अंशों में मापा जाता है। वस्तुतः सम्पात की गति को ही अयनांश कहा जाता है। अयन गति भी प्रतिवर्ष 50.2 प्रतिविकला खिसकने से कुछ वर्षों के अन्तराल पर भेद उत्पन्न करता है। सम्प्रति भारत के मूर्धन्य खगोलशास्त्रियों ने जो अयनांश निर्धारित किये हैं, उसे चित्रापक्षीय, केतकरीय या लाहिरी का अयनांश कहा जाता है। यही वर्तमान में सर्वाधिक प्रचलन के हैं। लेकिन अचल नक्षत्रपुंज एवं निरयण सम्बद्ध सभी मानों को विकृत कर निसर्ग से कटने की होड़ एवं शास्त्रशुद्ध पद्धति के समन्वित पक्ष की उपेक्षा अभी भी गतिमान है।
8. **सायन-निरयण भेद** — पंचांग निर्माण की दो प्रमुख पद्धति है — एक सायन पद्धति दूसरा निरयण पद्धति। आज ये दो भेद भी पंचांगों में अन्तर के बड़े कारण माने जाते हैं। सायन अयनांश सहित तो निरयण अयनांश रहित होता है।

इसके अतिरिक्त भी पंचांग भेद के कई कारण हो सकते हैं। यह अनवरत अवलोकन एवं प्रयोगजन्य विषय है।

पंचांग भेद के अन्य पक्ष को समझने के लिए हमें यह भी जानना होगा कि सम्प्रति भारतवर्ष में पंचांग निर्माण मुख्यतः दो विधियों द्वारा किया जा रहा है— उनमें एक दृश्य विधान है, तो दूसरा अदृश्य विधान। आधुनिक पद्धति (नाटीकल अल्मनाक पद्धति) द्वारा निर्मित 'दृक्सिद्ध पंचांग' का सम्बन्ध दृश्य विधान से है। आज कतिपय आचार्य अपनी पारम्परिक पद्धति (सारिणी द्वारा) के अनुसार ही पंचांग का निर्माण करते हैं तथा कुछ विद्वान आधुनिकतम विधियों के अनुसार साधित ग्रहों के आधार पर पंचांग बनाना चाहते हैं। आधुनिक पद्धति को 'दृश्य गणित' कहते हैं तथा इस पद्धति से निर्मित पंचांग को 'दृश्य पंचांग' कहते हैं। जितने भी दृश्य कार्य हैं उनका साधन दृश्य पद्धति से ही होना चाहिए तभी गणितागत एवं वेधोपलब्ध परिणामों में साम्य हो सकेगा अन्यथा नहीं। पंचांग में दृश्य और अदृश्य गणितों का विधान शास्त्र सम्मत है। साधन में अदृश्य और ग्रहणोदयास्तादि में दृश्य गणित की आवश्यकता होती है। जैसा कि सिद्धान्तत्वविवेक में लिखा है —

अदृष्टफलसिद्धयर्थं यथाकार्त्तु युक्तिः कुरु।

गणितं यदि दृष्ट्यर्थं तद् दृष्युद्भवतः सदा।।

सिद्धान्ततत्त्वविवेक मध्यमाधिका (श्लो. 326)

नक्षत्रग्रहयोगेषु

ग्रहास्तोदयसाधने।

श्रृंगोन्नतौ तु चन्द्रस्य दृक्कर्मादाविदं स्मृतम्।।

सूर्य सिद्धान्त 7/11

अब यहाँ साधन में अदृश्य विधान की बात कही गयी है। पंचांग का प्रमुख अंग – ही है। अतः यहाँ गणित में अदृश्य विधान होना चाहिए। ऐसा आचार्यों का मत है।

दृक्सिद्ध क्या है? इसे समझने के लिए सर्वप्रथम गणितागत ग्रहों एवं वेध द्वारा साधित ग्रहों को जानना होगा। गणितागत ग्रह से तात्पर्य अहर्गणोत्पन्न मध्यम ग्रह में मन्दफल, शीघ्रफलादि स्पष्ट संस्कारजन्य स्पष्टग्रह से है, जिसे 'दृक्तुल्य' भी कहा जाता है। तथा वेध द्वारा साधित ग्रह से तात्पर्य वेधयन्त्र द्वारा साधित ग्रह से हैं।

जब गणितागत ग्रह वेधयन्त्र द्वारा साधित ग्रह के साम्य होता है, तो उसे दृक्सिद्ध कहते हैं। दृग्गणितैक्य का स्वरूप प्रासंगिक है। नेत्रों द्वारा आकाशस्थ ग्रहों को वेधकर गणितीय विधान से एकरूपता देने की पद्धति को 'दृग्गणित' कहते हैं। इसका महत्व प्राचीनकाल से ही सम्प्रत्यावत् विद्यमान है। पौरुष सिद्धान्त के आविष्कारक आचार्य आर्यभट्ट से लेकर विद्यावाचस्पति मुरलीधर ठाकुर पर्यन्त सभी आचार्यों ने दृग्गणित सिद्धान्त के महत्त्व को स्वीकृत किया है। वेध द्वारा सिद्ध पृष्ठीय सायन और पृष्ठीय वेधोपलब्धग्रह से गर्भीयसाधन करने की पद्धति का सूक्ष्म विवेचन ही दृक्सिद्ध का वास्तविक पक्ष होता है। गर्भीय ग्रह निरयन होता है। **भारतीय पद्धति मूलतः इसी को ग्रहण करता है।**

आचार्य भास्कराचार्य जी ने अपने ग्रन्थ सिद्धान्तशिरोमणि के स्पष्टाधिकार में स्पष्टग्रहों के दृग्गणित सिद्धान्त के महत्त्व को इस प्रकार निरूपित किया है –

**यात्राविवाहोत्सवजातकादौ खेटैः स्फुटैरेव फलस्फुटत्वम्।**

**स्यात्प्रोच्यते तेन नभश्चराणां स्फुटक्रिया दृग्गणितैक्य कृद्या।।**

प्रस्तुत श्लोक में भी दृग्गणित के महत्त्व को स्वीकार किया गया है। यात्रा, विवाह विभिन्न उत्सवों एवं जातक शास्त्र में स्पष्ट ग्रह के द्वारा ही प्रभाव का स्फुटत्व का सम्बन्ध माना है। दृग्गणित सिद्ध गर्भीय क्रान्तिवृत्तीय स्थानाभिप्रायिकग्रह स्पष्टाधिकारान्त गणित से आता है। त्रिप्रश्नादि उदयास्ताधिकारान्त विभिन्न पृष्ठीय संस्कारों से ये स्थानाभिप्रायिक ग्रह दृश्य होते हैं। अतः स्थानाभिप्रायिक गणित से लाये ग्रह एक प्रकार का दृग्गणित है। इससे ग्रह बिम्ब का दर्शन नहीं होता। यदि गणित के द्वारा लाये ग्रह में उदयास्तान्त समस्त संस्कार किये जाये, तभी बिम्बीय ग्रह दृश्य होता है। यदि दृश्य नहीं हो सके तथा जितने अन्तर से दृश्य हो, उतना कालान्तर जन्य अन्तर समझना चाहिए। अतः इस प्रकार यदि ग्रह समान हो तो 'दृक्सिद्ध' कहलाता है, अन्यथा नहीं।

विदित हो कि सर्वत्र दृग्गणित के अनुसार ग्रहों का स्पष्टीकरण का विधान स्पष्टाधिकार में निरूपित किया गया है, परन्तु स्पष्टाधिकार में साधित स्पष्ट ग्रह का जो साधन किया गया है, वह दृग्ग्रह नहीं होता। वह उदयास्ताधिकार में दृश्य होता है।

सायन पृष्ठीय और सायन गर्भीय दो प्रकार सायन सम्बन्ध भी गोल में निहित है। सायन पृष्ठीय के ही वेध गोलीय का महत्त्व है न कि अन्यो का। नक्षत्रों को भू सापेक्ष अचलत्व होने से हजारों वर्षों में भी नक्षत्रों का चलत्व भाव नहीं होता। उनकी अपनी गति से ही नक्षत्र पुंज की आकृति लाखों वर्षों में किञ्चित् परिवर्तित होते हैं। फलस्वरूप नक्षत्रों के कदम्बाभिमुख भोगों का अन्तर दीर्घकाल में होने से, उनसे उत्पन्न प्रभाव भी परिवर्तित होते हैं। इसलिए निरयन नक्षत्र स्वरूप का वर्णन है। यहाँ पर सौर गोल के तथा गोलीय क्षेत्रों के साम्पातिक होने से सौरमण्डल को सायन के रूप में माना जाता है। वहाँ भोग की दृष्टि से निरयन पृष्ठीय तथा निरयन गर्भीय, ये दोनों पक्ष नक्षत्रों से सम्बन्धित होने से निरयन सम्बद्ध कहा गया है। उन दोनों का संयुक्त समन्वित स्वरूप

भारतीय पद्धति से सम्भव है, जहाँ स्थानाभिप्रायिक, बिम्बाभिप्रायिक ग्रह का निरयण तथा गर्भीय एवं पृष्ठीय भेद के साथ सायन रूप भी बनते हैं।

कालान्तर से ही ग्रहचार में भी महद् अन्तर देखा जाता है। अपने निर्माण काल में सभी पद्धति सूक्ष्म होती है। विभिन्न परिवर्तन कालान्तर के द्वारा होता है। कक्षावृद्धि, कक्षाह्रास, फल की वृद्धि तथा ह्रास और ग्रहकक्षा का मार्गान्तर, कक्षा का संकुचन और प्रसारण, गुरुत्वाकर्षण और विकर्षण निष्पत्ति से प्रत्येक क्षण होने वाले परिवर्तन, ग्रह की दूरी तथा समीपता में परिवर्तन, कोणान्तर निष्पत्ति में परिवर्तन, शीघ्रोच्च, मन्दोच्च पात आदि का स्थान परिवर्तन, आकर्षण विकर्षण आदि के निष्पत्ति में अन्तर आना, भूपृष्ठीय परिणाम में क्षितिजान्तर और स्थानान्तरण होने से और दृश्यान्तर एवं प्रभावान्तर आदि, ये सभी तथ्य विचारणीय विषय है। इन्हीं कारणों से कालान्तर में ग्रहगति में और कक्षाक्रम तथा फलों में अन्तर देखा जाता है। इनमें कुछ सिद्ध है तथा कुछ साध्य है। प्रत्येक के धन-ऋण चक्र में परमात्य और परमाधिक्य के मध्य में ह्रास-वृद्धि का यदि ज्ञान हो जाए तो कालान्तर में उत्पन्न अन्तर का उपपत्ति द्वारा निदान कर सकते हैं। विभिन्न कालिक ग्रन्थों में पठित अंकों में भी अधिक अन्तर उपर्युक्त कारणों से देखा जाता है। इन्हें सर्वसम्मति के द्वारा कैसे निदान हो एतदर्थ गणित की सूक्ष्मता के लिए निरन्तर वेध प्रक्रिया की सूक्ष्मता होने से कालान्तर जन्य अन्तर जानना सम्भव है।

प्राचीन पठितांकों में अन्तर का कारण कालान्तर जन्य अन्तर निरन्तर वेधजन्य परीक्षण से गम्य है। प्राचीन पंचसिद्धान्तिका से आरम्भ कर आर्यभट्ट से पूर्वक्रम से पराशर तक पठितांकों को स्वीकार कर प्रथमतः गोलीयगणित तथा वेध के आश्रय से आर्यभट्टीय सिद्धान्त प्रथम पौरुष सिद्धान्त के रूप में प्राप्त है। प्राचीन अष्टादश प्रवर्तकों के मूल सिद्धान्त ग्रन्थ के बदलें में इस समय विभिन्न सिद्ध वचन प्राप्त होते हैं। श्री ब्रह्मगुप्त के द्वारा रचित ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त ब्राह्म पक्ष का उदाहरण है।

श्रीमान् भास्कराचार्य जी के द्वारा रचित सिद्धान्तशिरोमणि में गोलीय युक्तियों का सम्यक् रूप से विस्तार किया गया है। उसी प्रकार से केशव, गणेश, मथुरानाथ, कमलाकर, जयसिंह, नीलाम्बर, बापूदेव, सुधाकर, गेनालाल चौधरी, केतकर, सदाशिव आपटे, अर्कसोमयाजि, दीक्षित, लाहिरी तथा मुरलीधर ठाकुर आदि के कार्य स्तुत्य हैं।

आकर्षण विकर्षण ताप, शीत, स्वदीप्त, परदीप्त, गोलीयपिण्डों के तथा उनके अन्तर्गत पंचभुतात्मक पिण्डों के तीन प्रकार से विरल, द्रव्य, दृढस्वरूपों की पाँच अवस्थाएँ एवं 25 तत्वों के उपर इस समय भी अन्वेषण एवं प्रयोग गतिशील हैं। ये सभी प्रयोग गोलाश्रित और गणित मूल के अन्तर्गत है। ये सभी अपने-अपने कालिक प्रायुक्तिकी तथा शिल्पजन्य विकास और सामर्थ्य पर आधारित माने जाते हैं। वैदिक वैज्ञानिक परम्परा का द्वितीय पक्ष है व्यक्त और अव्यक्त समन्वित क्रम का गोलीय दृष्टि से दिग्देशकाल एवं पात्र या पिण्ड की दृष्टि से यथार्थ का बोध जरूरी है। आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक त्रिविधवर्गीकरण के प्राचीन तथ्यों में आज आधिभौतिक विकास का पांचभौतिक द्वार उद्घाटित है। अतः दीर्घकालिक वेध एवं पूर्वपठितांकों के रक्षण से निकट भविष्य में कालान्तर गति निर्धारित करना है, तो निरन्तर वेध तथा गणितीय सत्यापन से सम्भव हो सकेगा। विदित हो कि दृग्गणितैक्य पर आधारित अन्तिम सिद्धान्त 'सिद्धान्तदर्पण' है, जो सामन्तचन्द्रशेखर की रचना है।

प्राचीन आचार्यों ने कालान्तर जन्य संस्कार का **बीज** संज्ञा नाम दिया है। आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त, भास्कर, केशव, गणेश, मथुरानाथ, जयसिंह, सुधाकर, सामन्तचन्द्रशेखर आदि आचार्यों ने स्व-स्व कालिक अन्तर बीजरूप के द्वारा पूर्वपठित अंक में संशोधित कर स्वकालिक अन्तर तथा मान प्रमाण दिये हैं, परन्तु मध्यकालिक आचार्यों ने बीजविधान

ग्रहण आदि में दृष्टप्रमाण सिद्धि के लिए तथा अदृष्ट फल सिद्ध के लिए निर्बीज विधान का निरूपण किया है। जैसे – कमलाकर ने कहा कि –

अदृष्टफल सिद्धयर्थं यथाकार्दगणितं कुरु ।  
 गणितं यदि दृष्ट्यर्थं तदृष्ट्युद्भवतः सदा ॥ (सिद्धान्ततत्त्व.अ.326)  
 सूर्यसिद्धान्तमतोद्वाऽर्कात्साध्यासदा तावधिकौ क्षयाख्यौ ।  
 मासौ ग्रहक्षैर्गणितं तथान्यत्साध्यं सदा यद्यपि तद् ग्रहाद्यम् ॥  
 स्थूलं सदा ब्राह्ममतं निरुक्तमादित्यसिद्धान्तमतं च सूक्ष्मम् ।  
 भाद्यादिके सूक्ष्मतरादसूक्ष्मं सूक्ष्मं मतं स्थूलत एव सिद्धम् ॥  
 अतोऽनिशं संक्रमणे शुभाविना स्थितौ सदा सूक्ष्मविधानसाधने ।  
 सौरमतं शस्तमथान्य निर्णये स्थूलं च मन्ये ग्रहसंक्रमेष्वपि ॥

इन श्लोकों में कमलाकरभट्ट ने सूर्यसिद्धान्त से ही अदृष्ट फल साधन के लिए गणित विधान को स्वीकार करना कहा है। ग्रह नक्षत्रों के दर्शन के लिए स्वदृश्य क्षितिजाभिप्रायिक दृग्गणितैक्य के लिए सबीज विधान का समर्थन किया है। सूर्यसिद्धान्त मत के द्वारा आनित यथास्थित सूर्य चन्द्र से अधिमास एवं क्षयमास का साधन करना चाहिए। ब्राह्ममत की अपेक्षा सूर्यसिद्धान्त का सूक्ष्मत्व भी प्रदर्शित किया गया है। इसी से चान्द्र सौर मासों का अन्तर अधिमासादि का निश्चय धार्मिक कार्य विभिन्न अनुष्ठान आदि अदृष्टफल समस्त साधन निर्बीज साधित यों में करना चाहिए। ग्रह का लोप दर्शन होन पर ताराग्रहों के योग होने पर, नत और उन्नत नतांश आदि, दिगंश क्रान्ति, शर आदि में सभी स्थानों पर सायन पृष्ठीय सभी ग्रहणादि दृश्य पदार्थ जितना अन्तरित होता है, उसके लिए उपपत्ति के द्वारा बीज संस्कार देकर दृग्गणितैक्य साधक सूक्ष्म गत्यादि के द्वारा सूक्ष्म गणित साधन से दृग्गणितैक्य पदार्थों का साधन कर करना चाहिए। इसी प्रकार ग्रह का उदयास्त तथा ग्रहण आदि का साधन करने योग्य है। अतः दृष्टि सिद्धि के लिए दृग्गणित विधान का प्रासंगिकरण सर्वकालिक सिद्ध है। इसलिए खगोलीय सर्वेक्षण का ग्रहगोलीय अन्वेषण क्रम का मनुष्यों के द्वारा लघुस्तरीय, वृहदस्तरीय और मुख्य खगोलीय परिवेक्षण केन्द्रों का महत्व भी सिद्ध होता है। भास्कर आदि आचार्यों ने सभी जगह इसका वर्णन किया है।

#### 4.3.2 पंचांग के दृश्य तथा अदृश्य पक्ष

पंचांग में दिखाई देने वाले पाँच अंगों के अतिरिक्त भी अनेक भेद होते हैं जो पंचांग में होते हैं, परन्तु दिखाई नहीं देते हैं। श्रौत तथा स्मार्त क्रियायें काल के अधीन होती हैं। काल के ज्ञान के बिना इनकी क्रिया सम्भव नहीं है। श्रुति (वेद) द्वारा जो कार्य होते हैं वे श्रौतकार्य कहलाते हैं। इनमें यज्ञ कार्य प्रमुख होता है। यज्ञ भी काल पर ही आधारित है। यथा दर्शपूर्णमासी यज्ञ। इसमें दो यज्ञ सम्मिलित है। इसमें पूर्णिमा तथा दर्श को यज्ञ सम्बन्धी वस्तुयें एकत्रित करके अगले दिन प्रतिपदा को यज्ञ आरम्भ करना चाहिये। सूर्य तथा चन्द्रमा जब एक स्थान पर होते हैं तो वह दर्श काल (अमावस्या) होता है, जो काल विशेष है। चन्द्रमा जब अपनी कलाओं को पूर्ण कर लेता है तब पूर्णिमा होती है। यह भी काल विशेष ही है यह दोनों स्थितियाँ कपोल कल्पित नहीं बल्कि समय पर आधारित तथा प्रत्यक्ष अनुभव करने योग्य है। इसलिए काल का साधन करना आवश्यक है।

यह काल साधन धार्मिक कार्यों के लिए भी आवश्यक है। सुसंस्कारी पत्नी धर्म, अर्थ, काम नामक तीनों तत्वों में सहायता करती है। विवाह लग्न के द्वारा ही उसका चरित्र पवित्र तथा दृढ़ होता है। इस विवाह लग्न के लिए भी शुभ समय की आवश्यकता होती है जो काल का ही पूरक है। इस तरह की सभी धार्मिक क्रियायें काल के आधार



पर ही की जाती है। जिस समय पर कार्य किया जायेगा, वो कार्य उस काल के अनुसार ही फलीभूत होगा अर्थात् वह उस किये गये समय के अनुरूप ही फल देगा। ज्योतिष शास्त्र को काल विधान शास्त्र कहते हैं। नारद जी के वचनानुसार – “विनैतदखिलं श्रौतं स्मार्तं कर्म न सिद्धयति।”

अब यहाँ प्रश्न उठता है कि समस्त कार्यों के करने वाले काल का साधन कैसे किया जाये? काल का न तो आरम्भ होता है और ना ही अन्त होता है। इसकी गणना भी नहीं की जा सकती। काल का अनुमान ही लगाया जा सकता है। काल दो प्रकार का बताया गया है— प्रथम लोकान्त कृत काल, यह लोकान्त का निर्देशन करता है। ग्रह आदि और अन्त से परे है। इसी काल द्वारा सृष्टि की उत्पत्ति व अन्त होता है। दूसरा कलनात्मक काल, इसे अनुमानात्मक काल भी कह सकते हैं। इस काल का साधन ग्रह नक्षत्रों की सहायता से होता है। प्राचीन ऋषि-मुनियों ने सटीक वैज्ञानिक पद्धति निर्मित की है। छः ग्रहों के कोणीयगति साधन करने की पद्धति। सभी ग्रह अपनी-अपनी कक्षाओं में भ्रमण करते हुए भूकेन्द्र में जो कोण निर्मित करते हैं उसे ही कोणीय गति कहते हैं। कोणीय गति का साधन इसलिए करते हैं क्योंकि ग्रहों की दूरियों को नगण्य माना गया है। इस तरह से ही साधित कोणीय गति के द्वारा काल की गणना की जाती है। यह काल व्रतपर्वादि कार्य में सहायता प्रदान करता है। पंचांग के भेद –

पंचांग दो प्रकार का माना गया है – 1. सौर सिद्धान्तीय पंचांग – जिसे आर्ष पद्धति पंचांग भी कहते हैं। 2. दृश्य पंचांग – वेध से सिद्ध किये ग्रहों द्वारा निर्णीत दृश्य पंचांग।

गणित कार्य में सूक्ष्मता के साथ सटीकता आती है। प्राचीन ऋषियों ने श्रुति, स्मृति, पुराण तथा प्राचीन ग्रन्थों को आधार बनाकर धर्मसिन्धु, निर्णयसिन्धु, पुरुषार्थ चिन्तामणि, हेमाद्रि, वीर मित्रोदय आदि ग्रन्थ रचे। प्रत्येक समय ग्रहों के गतिमान होने के कारण ग्रह नभ मण्डल में सदैव दिखाई नहीं देते। कभी दिखते हैं तो कभी अदृश्य हो जाते हैं। इसलिए इन ग्रन्थों के आधार पर स्पष्ट गतियों के द्वारा ग्रहस्पष्ट किया जाता है। ग्रह यदि राश्यादि चक्र में न दिखाई दे तो गणित क्रिया के अन्य संस्कारों द्वारा उसकी उपस्थिति देखी जाती है। इस गणित क्रिया को दृग्गणित की संज्ञा दी गयी है। आधुनिक पंचांग निर्माता इस गणित का उपयोग नहीं करते जिसके कारण पंचांग में अन्तर आ जाता है।

पंचांग साधन के द्वारा ही ग्रह का प्रत्यक्षीकरण होता है। यह फलादेश के लिए भी अतिआवश्यक है। क्योंकि जब पंचांग शुद्ध तथा सटीक होगा तभी फलदेश सही निकल पायेगा। अन्यथा फलोदश भी अशुद्ध हो जायेगा। पंचांग साधन के लिए सावन दिन, वार साधन, तिथि साधन, नक्षत्र साधन, योग साधन, करण साधन तथा चन्द्र साधन की आवश्यकता होती है।

**भारतीय पद्धति से दृग्गणितैक्य –**

हमारे सिद्धान्त ग्रन्थों में दृग्गणित की एकरूपता प्रारम्भ से ही महत्वपूर्ण है। यथा –

**यस्मिन् देशे यत्रकाले येन दृग्गणितैक्यकम्।**

**दृश्यते तेन पक्षेण कुर्यात् निर्णयम्।।**

जिन व्रत, पर्व, उत्सवादि आदि में ऋतुओं के साथ सम्बन्ध धर्मशास्त्रों में निर्दिष्ट है वहाँ, यदि निरयण मान ग्रहण करते हैं, तब वसन्तोत्सव शीतकाल में या वर्षाकाल में होगा। प्रत्यक्ष आकाशीय सूर्य स्थिति को दिन-रात्रि का मान प्रायः 21 मार्च से आसन्न

होने पर और 22 सितम्बर के आसन्न होने पर दिन-रात्रि समान होता है। किन्तु निरयण मान से इस समय प्रायः 23 या 24 दिनों का अन्तर निरयण मेष संक्रमण और तुला संक्रमण स्वीकार किया जाता है। अयनांश संस्कार से प्रत्यक्ष रूप से दृक् प्रतीति होती है।

ग्रहों के मार्ग स्पन्दशील तथा दोलायमान होने से स्थिर नहीं है। क्रान्तिवृत्त से ये जितना विक्षिप्त होते हैं, वे उनके परम विक्षेप तथा क्रान्तिवृत्त सापेक्ष ये जिस बिन्दु पर राशिचक्र का दक्षिण से उत्तर अतिक्रमण कहते हैं, वह प्रथमपात तथा जिस बिन्दु पर उत्तर से दक्षिण अतिक्रमण करते हैं वह द्वितीय पात है। क्रान्तिवृत्त से ग्रहविक्षेप दक्षिणोत्तर का परमत्व ध्रुवीय मापन तथा कदम्बप्रोतीय मापन से द्विविध होता है। उच्च, मन्दोच्च एवं पात की सापेक्षता से गणित एवं वेध से सभी तत्व ज्ञात करने के सैद्धान्तिक विधान तथा प्रयोग प्रकार भारतीय ज्योतिष में उपलब्ध हैं। यह कथन अतिशयोक्ति नहीं है कि, सहस्रों ग्रन्थ समीक्षा की प्रत्याशा में आज भी पुस्तकालयों की शोभा बढ़ाते हुए मुद्रण बाध्य हो रहे हैं। उनके त्रिविध संरक्षण क्षीणतम अवस्था को प्राप्त हो रहे हैं। गणितागत ग्रह जब वेध से साम्य रखते हैं, तो उस पद्धति को दृग्गणितैक्य विधायक पद्धति कहते हैं। गणितोपलब्ध क्रान्तिवृत्तीय स्थानाभिप्रायिक ग्रहों में दृक्कर्मादि संस्कार करने के बाद ही ग्रहर्क्ष दृश्य होते हैं। इसके बाद भी कालान्तर जन्य अन्तर के कारण यदि बिम्बोदय गणितागत काल से जितना पूर्व या बाद में होता है, उसके हिसाब से पद्धति की तात्कालिक स्थूलता का बोध होता है। अतः सद्यः द्विविध गोलीय वेध एवं गणितीय सत्यापन का दृढ़ सम्बन्ध सिद्ध है। इस क्रम के टूटने से ही भ्रम की प्रवृत्ति हुई है। अतः इसके निराकरणार्थ राष्ट्रीयवेधशाला एवं क्षेत्रीयवेधशाला निर्माण कर निरन्तर वेध की महती आवश्यकता है।

वास्तविक बिम्बोदय तथा आभासिक बिम्बोदय का अन्तर काल भी आज ज्ञात है। ज्योतिषसिद्धान्त में भी इसके संकेत मिलते हैं। न्यूनाधिक गति से चलायमान ग्रह वर्तमान में दृग्गणितैक्य से जितना भी अन्तरित उपलब्ध हो, उसे जानकर अन्तर के कारण एवं अनियत अन्तर एवं कालान्तरगति का निर्धारण कर ले तो दीर्घकाल तक के लिए समस्या समाप्त हो जायेगी।

कोई भी परिवर्तन गति दीर्घकाल सापेक्ष एकरूपक नहीं रहती। अतः सदा बीज संस्कार एवं बीजान्तर अधिक होने पर वर्तमान उपलब्धि एवं मानक के आधार पर नये-नये करण ग्रन्थ बनते रहे हैं। चूँकि नासा, यूरोपियन अल्मनाक तथा भारतीय खगोलपरिषद भी अनियत परिवर्तन की वर्तमान गति से मापने के मानक की बाध्यता को अभी नहीं तोड़ सके हैं। फलतः शुद्ध फलचक्र के चक्कर में अचलवत् निरयण नक्षत्रचक्र से सायन सौरचक्र का सम्बन्ध खण्डित कर रहे हैं।

त्रिपक्ष में निरयण, सायन तथा मन्दकैन्द्रिक ये तीन पक्ष हैं। ये तीनों नैसर्गिक यथा अचलनक्षत्र के हिसाब से निरयण, सूर्य या पृथ्वी के संपातिक विलोम विचलन से सायन पक्ष, सूर्यसापेक्ष गणना-सायन, भूकेन्द्र से सूर्य एवं ग्रहों से परमदूरी तथा परमाल्प दूरी से उत्पन्न केन्द्रीय गणना भूकौन्द्रिकगणना ये तीन पक्ष हैं।

**दृश्य पंचांग का पक्ष भी प्राचीन —**

“पृष्ठस्थाने ग्रहं विध्वा कथं कार्यः कुकैन्द्रिकः।” के समाधान में सभी सिद्धान्त वेध सिद्ध ग्रह को स्थानाभिप्रायिक भूकेन्द्रिक में बदलने की युक्ति देते हैं। सिद्धान्तशिरोमणि स्पष्टाधिकारान्त प्रभा टीका में पृष्ठीय ग्रह से गर्भीय ग्रह लाने की युक्ति मिलती है। उपपत्तीन्दुशेखर में म.म. दुर्गा प्रसाद द्विवेदी ने भी इस तथ्य की विधिवत् समीक्षा की है। भास्करादि आचार्यों ने तथा सूर्यसिद्धान्त में भी इस प्रकार की युक्ति मिलती है।

पंचांग समिति का प्रतिवेदन में भी पं. रामसुचित त्रिपाठी प्रभृति विद्वानों ने निर्बीज से साधन तथा सबीज से ग्रहणादि साधन का समर्थन किया। इस पक्ष का खण्डन पं. दीनानाथ शास्त्री चुलैट, प्रोफेसर शक्तिधर शर्मा (शास्त्रशुद्ध पंचांग मीमांसा में) स्वर्गीय शंकरबालकृष्ण दीक्षित तथा अनेक सूक्ष्मतावादी सूक्ष्म निरयण समर्थक लाहिरी प्रभृति करते हैं, लेकिन ये प्राचीन विधान इस महाकाशविज्ञान के युग में समीक्षणीय है। क्योंकि पूर्व समीक्षा में अदृष्ट तथा दृष्ट का शास्त्रीय स्वरूप दर्शाया गया है। पूर्वकालिक पद्धति का स्थानाभिप्रायिक ग्रह ग्रहचारान्तर से निश्चित कालखण्ड के पश्चात् स्थानान्तरित होने से दृक्कर्मादि संस्कार करने पर भी दृश्यता खोते हैं। वहाँ कालान्तर बीजदान से प्राप्त दृश्यत्व तो ठीक है, लेकिन अदृष्ट स्थिति को स्थूल छोड़ना किस दृष्टि से ठीक है। एतदर्थ परम्परागत प्रमाणों की समीक्षा से दृष्ट तथा अदृष्ट दोनों पक्ष सूक्ष्म मान-प्रमाण से गृहीत होने के प्रमाण तथा संकेत निगमागम सम्मत होने से ग्राह्य है।

वैदिक काल में सुपर्णचिति पंचांग से प्रारम्भ कर सामन्त चन्द्रशेखर तथा जयसिंह तक के प्रमाण द्रष्टव्य तथा समीक्षणीय हैं। आकाशीय निरीक्षण से वैदिक ऋषि सुपर्णचिति पंचांग की गणना एवं दृग्गणितैक्य करते थे। 'प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शनमिति' वैदिकप्रमाण इसका यजुर्वेदीय संकेत है। प्रभाकरसिद्धान्त भी पं. दीनानाथ शास्त्री चुलैट का दृश्य पंचांग साधक विधान है। दृक्सिद्ध और दृक्तुल्य ये दो स्थितियाँ हैं। दृक्तुल्य ग्रह आकाश में दृश्य होते हैं। दृष्ट्या सिद्धः दृक्सिद्धः की व्युत्पत्ति से दृष्टि से सिद्ध ग्रह भी पूर्वार्ध का ही अर्थात् दृक्तुल्य का द्योतक है, लेकिन वस्तुतः दृष्ट्यासिद्धः का तात्पर्यार्थ क्रान्तिवृत्तीय कदम्बसूत्रीय स्थानाभिप्रायिक सूक्ष्म निरयण का द्योतक हो जाता है। ये ग्रह ही पंचांग तथा धर्मानुष्ठान के योग्य हैं। दृक्तुल्य ग्रह से ग्रहणादि तो ठीक-ठीक दृश्य होते हैं, लेकिन उन दोनों का अन्तर भी भास्करादि के प्रमाण से सिद्ध है। पं. चुलैट, एन.सी. लाहिरी, केतकर, प्रो. शक्तिधर शर्मा तथा अन्य आचार्यों ने दृक्तुल्य ग्रहों को दृक्सिद्ध करने की चेष्टा की, लेकिन उनके प्रकार इन्हें कितना दृक्सिद्ध बना पाया, यह समीक्षा का विषय है।

#### 4.4 दृक्प्रत्ययद् नवीन पंचांग

सम्प्रति हमारे देश में प्रचलित सभी निरयण पंचांगों से दृक्प्रतीति नहीं होती अर्थात् उनमें लिखी परिस्थिति आकाश में नेत्रों से प्रत्यक्ष दिखायी नहीं देती, अतः कुछ लोगों ने नवीन दृक्प्रत्ययद् सूक्ष्म पंचांग बनाना आरम्भ किया है। अब यहाँ उन्हीं का वर्णन करेंगे।

9. **केरोपन्ती अथवा पटवर्द्धनी पंचांग** — यह पंचांग शक 1787 से छपता है, इसमें अक्षांश और रेखांश बम्बई के हैं। केरो लक्ष्मण छत्रे इसके कर्ता और आबा साहब पटवर्धन प्रवर्तक थे। आरम्भ में कुछ दिनों तक छत्रे जी ने इसके गणित स्वयं किया होगा। बाद में उनकी देखरेख में वसई के आबा जोशी मोघे करते थे। उनका स्वर्गवास हो जाने के बाद उनके वंशज करते हैं। केरोपन्त के बाद उसका निरीक्षण उनके पुत्र नीलकण्ठ विनायक छत्रे करते हैं। सुनते हैं, केरोपन्त के बाद उसका पुत्र और कई शिष्य भी कुछ गणित करते हैं। रत्नागिरि के जगन्मित्र प्रेस के मालिक जर्नादन हरि आठले की इस पंचांग पर बड़ी श्रद्धा है। शक 1791 से 1811 पर्यन्त वे इसे अपने व्यय से छापते थे। पहले इसका नाम 'नवीन पंचांग' था। इसके गणित का खर्च आबा साहब पटवर्धन देते थे। उन्हें यह विषय बड़ा प्रिय था। उन्होंने तीन चार सहस्र रूपया व्यय करके कुछ यन्त्र भी मोल लिये थे और वे स्वयं वेध करते थे। यद्यपि यह सत्य है कि इस पद्धति के कल्पक केरोपन्त हैं, परन्तु आबासाहब प्रोत्साहन न देते तो इसका उदय न हुआ होता।

पटवर्धन की स्मृति में शक 1799 से इसका नाम नवीन या पटवर्धनीय पंचांग रखा गया। शक 1812 से पूना के चित्रशाला प्रेस के मालिक वासुदेव गणेश जोशी इसे अपने व्यय से छपाते थे। पंचांग का विक्रय कम होने के कारण उन्हें इसमें घाटा हुआ करता है। आठले और जोशी ने यदि छापना स्वीकार न किया होता तो यह पंचांग कभी का लुप्त हो चुका होता, परन्तु किसी ने उनका प्रत्यक्ष आभार भी नहीं माना। इतना ही नहीं, वे अपने व्यय से पंचांग छपाते हैं, यह बात किसी ने प्रकाशित तक नहीं की।

२. **दृग्गणित पंचांग** – मद्रासनिवासी रघुनाथाचार्य जी ने इंग्लिश नाटिकल आल्मनाक द्वारा शक 1791 से यह पंचांग बनाना आरम्भ किया। यह द्रविड़ और तैलंगी दोनों लिपियों में छपता है। इससे ज्ञात होता है कि उन प्रान्तों में इसका विशेष प्रचार है। इसे शिरिय (लघु) कहते हैं। प्रतीत होता है रघुनाथाचार्य अपने समय में पेरिय (वृहत्) दृग्गणित पंचांग बनाते थे। रघुनाथाचार्य जी का उपनाम चिन्तामणि है। उनके पुत्र वेंकटाचार्य का बनाया हुआ शक 1818 (वर्तमान कलि 4998) का द्रविड़ लिपि में छपा हुआ शिरिय सौर पंचांग हमारे पास है। उसमें शक 1819 की मेषसंक्रान्ति रविवार (11 अप्रैल 1897 ई0) को 52 घटी 43 पल पर है। सूर्यसिद्धान्तानुसार स्पष्ट मेषसंक्रान्ति लगभग इसी समय आती है। बहुत थोड़ा अन्तर पड़ता है। इससे सिद्ध होता है कि इसमें सूर्यसिद्धान्तागत स्पष्टरवि और नाटिकल अल्मनाक द्वारा लाये हुए स्पष्ट सायन रवि के अन्तर तुल्य शक 1819 के आरम्भ में 22/15 अयनांश माना है। इसमें अक्षांश और रेखांश मद्रास के होंगे।

**बापूदेव शास्त्री का पंचांग** – बापूदेव शास्त्री को सायन गणना मान्य है। सन् 1863 के लगभग सायन गणना की शास्त्रीयता के विषय में उन्होंने इंग्लिश में एक निबन्ध लिखा था। वह छपा है। उससे ज्ञात होता है कि उनके मन में सायन पंचांग ही शास्त्रानुकूल है। यद्यपि उन्होंने काशीराज के आश्रय द्वारा शक 1798 से निरयन पंचांग छपाना आरम्भ किया है तथापि निरयन पंचांग को मानने वाली जनता के केवल सन्तोष के लिए उन्होंने ऐसा किया है, क्योंकि पंचांग की प्रस्तावना में ऐसा लिखा है कि –

महाराजाधिराजद्विजराज श्री ५ मदीश्वरीप्रसादनारायणसिंहबहादुरारख्येन श्रीकाशीनरेश .....  
आदिष्टः पंचांगकरणे प्रवृत्तोऽहम्। भवति यद्यप्यत्र सायनगणनैव मुख्या तथाप्यस्मिन्  
भारतवर्षे सर्वत्र निरयनगणनाया एव प्रचारात् सामान्यजन प्रमोदायेदं तिथिपत्रं  
निरयनगणनयैव व्यरचयम्।।

बापूदेव शास्त्री का पंचांग इंग्लिश नाटिकल अल्मनाक से बनता है। उसमें अक्षांश और रेखांश काशी के हैं। उन्होंने लिखा है कि सूर्यसिद्धान्तादि ग्रन्थों द्वारा लाये हुए रवि और सूक्ष्म सायन रवि के अन्तर तुल्य इसमें अयनांश माना है। नाटिकल अल्मनाक के सायन रवि और अपने पंचांग के निरयन रवि की तुलना करते हुए इन्होंने शक 1806 में अयनांश लगभग 22 अंश 1 कला माना है। उस वर्ष सूर्यसिद्धान्तानुसार अमान्त चौर कृष्ण १ शुक्रवार को काशी के स्पष्ट सूर्योदय से 30 घटी 26 पल पर मेष संक्रान्ति आती है पर बापूदेव शास्त्री के पंचांग में उसी दिन 31 घटी 12 पल अर्थात् सूर्यसिद्धान्त से वह 46 पल आगे है। अन्य किसी भी सिद्धान्त से यह काल नहीं आता। इससे सिद्ध होता है कि उन्होंने अन्य किसी ग्रन्थ का नहीं बल्कि सूर्यसिद्धान्त का ही लिया है। उसमें 46 विकला की अशुद्धि होगी। केरोपन्त से बापूदेवशास्त्री का वाद विवाद हुआ था, उस सम्बन्ध में उन्होंने पूना के ज्ञानप्रकाश पत्र के 14 जून सन् 1880 के अंक में एक लेख दिया था। उसमें लिखा था कि सूर्यसिद्धान्त का ही लेना

चाहिए परन्तु मध्यम। उपर्युक्त सूर्यसिद्धान्तागत मेषसंक्रान्तिकाल में नाटिकल अल्मनाक द्वारा सायन रवि 22/0/31 आता है, अतः अयनांश इतना ही मानना चाहिए,

पर शास्त्री जी 22/1/0 माना है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने पंचांग में मध्यम रवि का नहीं बल्कि स्पष्ट रवि का ही अन्तर स्वीकार किया है। बापूदेव शास्त्री के पश्चात् उनके शिष्यों ने पंचांग बनाने का काम जारी रखा है।

अन्य पंचांगों से बापूदेवशास्त्री के पंचांग में भिन्नता केवल इसी एक बात की है कि वह नाटिकल अल्मनाक से बनाया जाता है, इस कारण उसकी ग्रहगतिस्थिति शुद्ध अर्थात् दृक्प्रत्ययद होती है। अयनांश में थोड़ा अन्तर है पर वह नहीं के बराबर है। सूर्यसिद्धान्तार्गत रवि और नाटिकल अल्मनाक के रवि के अन्तर तुल्य अयनांश मानने से वर्षमान सूर्यसिद्धान्तीय मानने सरीखा ही होता है।

इसके अतिरिक्त तंजौर प्रान्त के तिरुवादि स्थान निवासी सुन्दरेश्वर श्रौती और वेंकटेश्वर दीक्षित शक 1798 से तमिल लिपि में एक सूक्ष्म सौर पंचांग बनाते हैं। उसमें शक 1815 के आरम्भ में अयनांश 22/10 अर्थात् लगभग रघुनाथाचार्य के पंचांग तुल्य ही मानना है। उस वर्ष मेषसंक्रान्ति भौमवार को 51 घटी 31 पल पर लगी है। प्रतीत होता है कि तिरुवादि में ज्योतिस्तन्त्रसभा नाम की कोई सभा स्थापित हुई थी। उसके अध्यक्ष चिदम्बरम् ऐयर ने सन् 1883 ई0 में (Hindu Zodiac) नामक एक छोटा सा ग्रन्थ लिखा है। उसमें उन्होंने लिखा है कि उपर्युक्त पंचांग कुंभकोणस्थ शंकराचार्य की आज्ञानुसार बनता है। राजपूताने के खेतड़ी नामक रियासत के राजा अजितसिंह की आज्ञा से रूडमल्ल नामक ज्योतिषी का बनाया हुआ अजितप्रकाश नामक शक 1818 का पंचांग भी नाटिकल अल्मनाक पर ही आधारित है। इसमें वर्ष के आरम्भ में अयनांश 22/11 है तथा इसमें अक्षांश और रेखांश खेतड़ी के हैं। अक्षांश 28 और कालात्मक देशान्तर उज्जयिनी से पश्चिम 3 पल दिया है।

#### 4.4.1 सायन पंचांग एवं राष्ट्रीय पंचांग

सायन पंचांग –

जिस दिन से दिनमान घटने या बढ़ने लगता है वस्तुतः उसी दिन से क्रमशः उत्तरायण और दक्षिणायन आरम्भ होता है और यह बात आकाश में भी प्रत्यक्ष दिखाई देने लगती है, पर ऐसा होते हुए भी हमारे देश में प्रचलित आजकल के पंचांगों में अयनप्रवृत्ति उस दिन नहीं लिखी रहती। हमारे पंचांगकार मकर और कर्क संक्रान्तियाँ लगभग 22 दिन बाद लिखते हैं। साधारण मनुष्य को भी शंका होगी कि वास्तविक परिस्थिति के विपरीत ऐसा क्यों किया जाता है। इस शंका की उत्पत्ति और उसके समाधानार्थ किये हुए संशोधन का फल आधुनिक सायन पंचांग है। इसके जन्म दाता लेले, जनार्दन, बालाजी मोडक और शंकरबालकृष्णदीक्षित हैं।

सायन पंचांगकार सायनपंचांग जिस पद्धति से बनाते हैं वह यह है – सम्पात से आरम्भ कर क्रान्तिवृत्त के तुल्य २७ भाग करके उन्हें अश्विन्यादि नक्षत्र और तुल्य 12 भागों को मेषादि राशि कहा है, अर्थात् अश्विनी नक्षत्र और मेष राशि को सम्पात से आरम्भ किया है, वहाँ तारात्मक नक्षत्र चाहें जो हो। इसी प्रकार सायन राशियों में सूर्य के प्रवेश को संक्रान्ति कहा है और उसी के अनुसार चान्द्रमासों के नाम रखे हैं। जिस चान्द्रमास में सायन मेषसंक्रान्ति होती है अर्थात् वसन्तसम्पात में सूर्य जाता है, उसे चैत्र कहा है। इसी प्रकार वैशाखादिकों की भी व्यवस्था की है। इस पद्धति से चैत्र में सर्वदा वसन्त रहेगा, आर्द्रा नक्षत्र में वर्षा आरम्भ होगी और इसी प्रकार सब ऋतुएँ नियमित मासों में होंगी।

सायन और निरयन मानों के ग्राह्याग्राह्यत्व का विचार यहाँ तार्किक दृष्टि से करते हैं। जैसे दिन की गणना का प्राकृतिक साधन सूर्योदय और मासगणना का प्राकृतिक साधन चन्द्रमा का पूर्ण या अदृश्य होना है, उसी प्रकार वर्षगणना का स्वाभाविक साधन ऋतुओं की एक परिक्रमा है। ऋतुयें उत्पन्न न हुई होती तो वर्ष एक कालमान न बना होता, पर ऋतुओं की उत्पत्ति का कारण सूर्य है, अतः वर्ष सौर मानना चाहिए और चूँकि ऋतुएँ सायन रवि के अनुसार होती हैं, अतः वर्ष भी सायन सौरमान का मानना चाहिए। दूसरे यह है कि 12 चान्द्रमासों में ऋतुओं का एक पूर्ण पर्यय नहीं होता, इसलिए बीच में अधिमास डालना पड़ता है। यदि अधिमास का प्रक्षेपण न किया जाय तो जैसे मुसलमानों का मुहर्रम 33 वर्षों में सब ऋतुओं में आता है, उसी प्रकार 33 वर्षों में चैत्र में क्रमशः सब ऋतुयें आ जाया करेंगी। अतः सिद्ध है कि अधिमास मानने का केवल यही एक उद्देश्य है कि किसी भी मास में सर्वदा एक ही ऋतु रहे। चूँकि ऋतुयें सायन मान पर अवलम्बित हैं, अतः अधिकमास का अवलम्बन करना तत्त्वतः सायन मान स्वीकार करने के समान ही है। जैसे अधिमास न मानने से 33 वर्षों में प्रत्येक मास में सभी ऋतुयें क्रमशः घूम जाती हैं, उसी प्रकार नाक्षत्र सौरवर्ष मानने से लगभग 26000 वर्षों में एक ही मास में क्रमशः सब ऋतुयें आ जायेंगी, अर्थात् चैत्र में आज यदि वसन्त है तो सवा चार सहस्र वर्षों में ग्रीष्म, साढ़े आठ सहस्र वर्षों में वर्षा और 17 सहस्र वर्षों के पश्चात् हेमन्त ऋतु होने लगेगी। 33 वर्षों में होने वाली ऋतुमास विपर्यय को दूर करने के लिए यदि हम अधिकमास मानते हैं, तो बहुत दिनों में ही क्यों न आये, परन्तु जिसका आना निश्चित है उस ऋतुमास विपर्यय को हटाने के लिए सायन सौरवर्ष स्वीकार करना भी अत्यन्त आवश्यक है।

सायन वर्षमान नैसर्गिक है, अतः सृष्टि उत्पन्न होने के बाद जब से वर्ष शब्द का व्यवहार होने लगा है तभी से उसका प्रचार होना चाहिए और वस्तुतः वह तभी से प्रचलित है। प्रायः वेदकाल में उसी का प्रचार था। मधु, माधव इत्यादि संज्ञाओं का प्रचार होने के पूर्व अधिकमास का प्रक्षेपण कर ऋतुओं के पर्यय द्वारा वर्ष मानते रहे होंगे अर्थात् उस समय कुछ स्थूल सायन ही वर्ष प्रचलित रहा होगा। उसके बाद मध्वादि नामों का प्रचार हुआ। उस समय सायनवर्ष के मान में बहुत सूक्ष्मत्व आ गया था। उसके सैकड़ों वर्ष बाद चौत्रादि नाम प्रचलित हुए, तब तक सायन मान का ही प्रचार था शकपूर्व 2000 वर्ष के लगभग चौत्रादि संज्ञायें प्रचलित हुईं और निरयनमान की नींव पड़ी। वेदांग ज्योतिष में धनिष्ठारम्भ से वर्षारम्भ माना है। यह निरयन मान है। परन्तु वेदांगज्योतिष में उत्तरायणारम्भ से भी वर्षारम्भ माना है। सूर्य के पास के नक्षत्र दिखाई नहीं देते, इससे धनिष्ठा के आरम्भ में सूर्य के आने के काल को जानने की अपेक्षा उत्तरायणारम्भ काल जानना एक अज्ञ के लिए भी सुगम होता है। अतः वस्तुतः अयनारम्भ से ही वर्ष का आरम्भ मानते रहे होंगे।

### राष्ट्रीय पंचांग –

भारत के स्वाधीनता से पूर्व पंचांगों के निर्माता प्राचीन सिद्धान्त, तन्त्र या करण ग्रन्थ के आधार पर पंचांगों का निर्माण करते थे और आज भी कर रहे हैं। अलग-अलग पद्धतियों के कारण जब पंचांगों में अन्तर होने लगा तथा इसके फलस्वरूप व्रत-पर्व-त्योहारों में और ग्रहस्पष्ट आदि में भी अन्तर दिखलाई पड़ने लगे। धर्मप्राण जनता के लिए यह अन्तर उस कालखण्ड के लिए ठीक नहीं माना गया। तभी राष्ट्रीय एकता को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए तथा पंचांगों में संशोधन व एकरूपता लाने के उद्देश्य से स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् ही केन्द्र की सरकार द्वारा एक 'केलेण्डर रिफॉर्म' कमेटी की रचना कर दी गयी थी। उस समिति के अध्यक्ष डॉ. मेघनाथ शाहा थे तथा श्री शंकरबालकृष्ण दीक्षित, निर्मलचन्द्र लाहिरी आदि इसके सदस्य थे। इस समिति ने अपना प्रतिवेदन बनाकर भारत सरकार को दिया और तदनुसार पूरे देश में एक ही

गणना द्वारा भारतीय पंचांगों के निर्माण का लक्ष्य रखा गया। इस समिति की सिफारिशों के अनुरूप ही चित्रापक्षीय (केतकरीय) अयनांश स्वीकृत हुआ। श्री वेंकटेश बापू केतकर ने इस अयनांश को सुझाया था इसलिए यह केतकरीय अयनांश के नाम से जाना जाता है। श्री निर्मलचन्द्र लाहिरी ने इसमें संशोधन किया था इसलिए इसे लाहिरी का अयनांश भी कहा जाता है। समिति ने देश भर के प्रमुख पंचांग निर्माताओं की बैठक बुलाकर अपने सुझाव उनके द्वारा अनुमोदित कराये और तभी से भारत में पंचांग दृग्गणित के अनुसार ही निर्मित होने लगे हैं। ऐसा नहीं है कि इसके पूर्व दृग्गणित पंचांग नहीं बनाये जाते थे अथवा पूर्वाचार्यों ने दृग्गणित की बात नहीं की थी। आप सभी को पूर्व में दृक्सिद्ध की बात बतायी जा चुकी है। यहाँ केवल इतना कहना है कि उक्त समिति के निर्णयोपरान्त दृक्सिद्ध पंचांग बनाने की दिशा में तीव्रता आने लगी।

उसी समय में सरकार के सामने एक दूसरी आवश्यकता यह थी कि इस देश में सरकारी कामकाज में विदेशी कैलेंडर का प्रयोग होता था, जिसे गुलामी के दिनों में अंग्रेजों ने भारत में प्रचलित किया था। अतः उसके स्थान पर चान्द्र तिथियों की तरह घटने-बढ़ने वाला न हो, ऐसा सूर्य की गति के अनुसार चलने वाला प्रामाणिक एवं वैज्ञानिक आधार पर प्रतिष्ठित पंचांग या कालदर्शक प्रारम्भ किया जाय। यद्यपि अंग्रेजों के आगमन के सहस्रों वर्ष पूर्व से भारत के विभिन्न प्रान्तों में सौरमास पर आधारित दिनांक चलते थे, जिनका उपयोग कई राजा-महाराजाओं के राज्यों में स्वाधीनतापर्यन्त होता रहा था तथा वहाँ के सामाजिक जीवन में आज भी हो रहा है परन्तु उन सबमें एकरूपता न होने से सम्पूर्ण देश में उनका व्यवहार एवं प्रचलन सम्भव नहीं था।

उपर्युक्त लक्ष्य की पूर्ति के लिए केन्द्रीय शासन ने कोलकाता नगर में पोजीशनल एस्ट्रोनॉमी सेन्टर की स्थापना की। उसी के द्वारा पंचांग निर्मित कराकर भारत सरकार का मौसम विज्ञान विभाग अंग्रेजी में एक Indian Astronomical Ephemeris (इण्डियन एस्ट्रोनॉमिकल एफेमेरिज) प्रकाशित करता है। इसका पूरा नाम इण्डियन नॉटिकल अल्मनाक है। परन्तु यह केवल जलयानों, वायुयानों एवं मौसम वैज्ञानिकों के उपयोग की पंजिका है। सर्वसाधारण के लिए भारत सरकार ने सन् 1957-58 ई० से 66 'राष्ट्रीय पंचांग' नाम से एक कालदर्शक का प्रकाशन प्रारम्भ किया है, जो अनवरत रूप से प्रतिवर्ष प्रकाशित होता रहता है। इसमें भारतीय पंचांग के पौँचों अंगों के अतिरिक्त दैनिक स्पष्टग्रह, दैनिक लग्नप्रवेश सारिणी, वर्षारम्भ दिनांक के मध्यम ग्रह तथा सभी सम्प्रदायों – वैष्णवों, शैवों, शाक्तों, स्मार्तों, बौद्धों, जैनों, सिक्खों, मुस्लिमों, ईसाइयों, यहूदियों एवं पारसियों के व्रत-पर्व-त्योहार उत्सव दिये जाते हैं।

**यह राष्ट्रीय पंचांग 13 भाषाओं में प्रतिवर्ष प्रकाशित होता है, उन भाषाओं के नाम निम्नलिखित हैं – संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, तमिल, तेलगु, असमिया, बंगला, गुजराती, कन्नड़, मलयालम, मराठी, उड़िया, तथा उर्दू।**

इस राष्ट्रिय पंचांग में जो मास स्वीकार किये गये हैं, वे सूर्य की सायन-गणना पर आधारित हैं, परन्तु खेद की बात यह है कि उनके साथ वर्ष के प्रयोग के लिए शकाब्द का प्रयोग किया है जो ईसवी सन् से भी बाद का है। यदि सरकार इसके स्थान पर कलियुगाब्द स्वीकार कर लेती तो इतिहास के विद्यार्थियों का ईस्वीपूर्व तथा ईसवी पश्चात् की तरह शालीवाहन पूर्व तथा शालीवाहन पश्चात् नहीं रटना पड़ता।

**राष्ट्रीय पंचांग का वर्षारम्भ** – राष्ट्रीय पंचांग के लिये स्वीकृत नववर्ष का आरम्भ जिस वर्ष फरवरी 29 दिन की होती है, उसी वर्ष 21 मार्च से तथा सामान्य वर्ष में 22 मार्च से होता है। उस दिन वसन्त सम्पात का दिन होता है और दिन-रात बराबर हो जाते हैं। दोनों का मान 12-12 घण्टे अथवा 30-30 घटी होता है। इसके पश्चात्

दिन बढ़ता है और रात छोटी होने लगती है। सूर्य इस दिन उत्तर गोल में प्रवेश कर जाता है तथा वसन्त ऋतु आधी व्यतीत हो जाती है। इस प्रकार यह वर्षारम्भ वैज्ञानिक आधार पर प्रतिष्ठित है। राष्ट्रीय पंचांग का वर्षमान सामान्य वर्ष में 365 दिवस तथा प्लुतवर्ष में 366 दिवस होता है। राष्ट्रीय पंचांग के लिए मासों का नाम प्राचीन प्रचलित पंचांगों के अनुरूप ही है – चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ तथा फाल्गुन।

### राष्ट्रीय पंचांग की विशेषतायें –

- इसके महीने वैशाख से लेकर भाद्रपद तक 31 दिन के तथा आश्विन से लेकर फाल्गुन तक लगातार प्रत्येक मास तीस दिन का होता है।
- प्लुतवर्ष को छोड़कर चैत्र भी 30 दिनात्मक होता है।
- अंग्रेजी कैलेंडर के मास तीस या 31 दिन के होते हैं यह याद रखना सामान्य बुद्धि के लिए कठिन है, परन्तु राष्ट्रीय मासों के दिन सरलतापूर्वक स्मरण रखे जा सकते हैं।
- इस पंचांग को अंग्रेजी कैलेंडर की तरह सम्पूर्ण देश में रेल, तार, डाक तथा सरकारी एवं दैनिक जीवन के कार्यों में उपयोग कर सकते हैं।

इस प्रकार से यह राष्ट्रीय पंचांग शकाब्द 1943 के प्रारम्भ होने पर अपने 63 वर्ष पूर्ण कर 64 वें वर्ष में प्रवेश करेगा। इस पंचांग के मास तथा दिनांक शासकीय कैलेंडर में अंग्रेजी दिनाकों के साथ लाल स्याही में मुद्रित किये जा रहे हैं। इस प्रकार के कैलेंडर सभी राज्य सरकारें अंग्रेजी तथा अपने प्रदेश की भाषा में छापकर शासकीय कार्यालयों में वितरित कर रहे हैं, परन्तु राष्ट्रभाषा हिन्दी की तरह यह नया राष्ट्रीय पंचांग आज तक स्वतन्त्र रूप से शासन द्वारा स्वीकृत एवं आदेशित नहीं हो पाया है। इसीलिए इस पंचांग का प्रचलन अधिक नहीं है। अंग्रेजी कैलेंडर के साथ देशी मासों के नाम लाल स्याही में देने से लोग उन्हें चान्द्र तिथि समझने की भूल अनेक बार करते हैं। अपने कालखण्ड में किया गया यह प्रयास सराहनीय तो है किन्तु आज भी भारत की धर्मप्राण जनता पारम्परिक शास्त्रशुद्ध पद्धति के द्वारा निर्मित पंचांग को ही अपने दैनिक जीवन में व्रत-पर्व-त्योहार आदि में उपयोग करती है।

## 4.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि पंचांगों में भेद स्वाभाविक है। पंचांगों में भेद के कालान्तर जन्य, निर्माण पद्धति जन्यादि कई कारण होते हैं। सम्प्रति भारतवर्ष में पंचांग निर्माण मुख्यतः दो विधियों द्वारा किया जा रहा है— उनमें एक दृश्य विधान है, तो दूसरा अदृश्य विधान। दृक्सिद्ध पंचांग का सम्बन्ध दृश्य विधान से है। आज कतिपय आचार्य अपनी पारम्परिक पद्धति (सारिणी द्वारा) के अनुसार ही पंचांग का निर्माण करते हैं तथा कुछ विद्वान आधुनिकतम विधियों के अनुसार साधित ग्रहों के आधार पर पंचांग बनाना चाहते हैं। आधुनिक पद्धति को 'दृश्य गणित' कहते हैं तथा इस पद्धति से निर्मित पंचांग को 'दृश्य पंचांग' कहते हैं। जितने भी दृश्य कार्य हैं उनका साधन दृश्य पद्धति से ही होना चाहिए तभी गणितागत एवं वेधोपलब्ध परिणामों में साम्य हो सकेगा अन्यथा नहीं। दृक्सिद्ध क्या है? इसे समझने के लिए सर्वप्रथम गणितागत ग्रहों एवं वेध द्वारा साधित ग्रहों को जानना होगा। गणितागत ग्रह से तात्पर्य अहर्गणोत्पन्न मध्यम ग्रह में मन्दफल, शीघ्रफलादि स्पष्ट संस्कारजन्य स्पष्टग्रह से है, जिसे 'दृक्तुल्य' भी कहा जाता है। तथा वेध द्वारा साधित ग्रह से तात्पर्य वेधयन्त्र द्वारा साधित ग्रह से हैं।



जब गणितागत ग्रह वेधयन्त्र द्वारा साधित ग्रह के साम्य होता है, तो उसे दृक्सिद्ध कहते हैं। दृग्गणितैक्य का स्वरूप प्रासांगिक है। नेत्रों द्वारा आकाशस्थ ग्रहों को वेधकर गणितीय विधान से एकरूपता देने की पद्धति को 'दृग्गणित' कहते हैं। इसका महत्त्व प्राचीनकाल से ही सम्प्रत्यावत् विद्यमान है। पौरुष सिद्धान्त के आविष्कारक आचार्य आर्यभट्ट से लेकर विद्यावाचस्पति मुरलीधर ठाकुर पर्यन्त सभी आचार्यों ने दृग्गणित सिद्धान्त के महत्त्व को स्वीकृत किया है। वेध द्वारा सिद्ध पृष्ठीय सायन और पृष्ठीय वेधोपलब्धग्रह से गर्भीयसाधन करने की पद्धति का सूक्ष्म विवेचन ही दृक्सिद्ध का वास्तविक पक्ष होता है। गर्भीय ग्रह निरयन होता है। भारतीय पद्धति मूलतः इसी को ग्रहण करता है।

#### 4.6 पारिभाषिक शब्दावली

|                |   |   |
|----------------|---|---|
| पंचांग         | — | पाँच अंगों (तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण) के समाहार को पंचांग कहते हैं।      |
| भेद            | — | अन्तर।  |
| दृक्तुल्य      | — | अहर्गणोत्पन्न मध्यम ग्रह में मंदफल, शीघ्रफलादि संस्कार द्वारा आनीत स्पष्ट ग्रह। |
| दृक्सिद्ध      | — | गणितागत ग्रह जब वेधोपलब्ध ग्रह से साम्य रखता हो, उसे दृक्सिद्ध कहते हैं।        |
| सायन           | — | अयनांश मान के सहित सायन पद्धति होता है।   |
| निरयण          | — | अयनांश रहित मान निरयण मान होता है।  |
| शाश्वत         | — | लगातार  |
| कालान्तर       | — | काल का अन्तर  |
| वेधजन्य        | — | वेध से सम्बन्धित  |
| गणितागत ग्रह   | — | गणित करके लाया हुआ ग्रह   |
| वेधोपलब्ध ग्रह | — | वेध द्वारा प्राप्त ग्रह   |

#### 4.7 बोध प्रश्न

1. पंचांग भेद से क्या तात्पर्य है?
2. दृक्सिद्ध एवं दृक्तुल्य में क्या अन्तर है? स्पष्ट कीजिये।
3. दृश्य एवं अदृश्य विधान का वर्णन कीजिये।
4. सायन पंचांग पर प्रकाश डालें।
5. निरयण पंचांग का निरूपण कीजिये।
6. पंचांग भेद के कारणों को स्पष्ट कीजिये।

#### 4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. भारतीय ज्योतिष – लेखक – श्री शंकरबालकृष्णदीक्षित, मुम्बई एवं लखनऊ से प्रकाशित।
2. आधुनिक पंचांग दर्शन – प्रोफेसर भास्कर शर्मा, मुद्रक – शीतल प्रिन्टर्स, जयपुर।

3. संवत्सरावली – टीका – पण्डित हीरालाल मिश्रः, प्रकाशक – भदैनी प्रेस, वाराणसी।
4. पंचांग विज्ञानम् – प्रोफेसर भास्कर शर्मा, हंसा प्रकाशन, जयपुर।
5. भारतीय ज्योतिष – डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री, प्रकाशन स्थल – नई दिल्ली।
6. पंचांग समिति का प्रतिवेदन – पंडित दीनानाथ शास्त्री चुलैट।
7. विश्व के प्रमुख कालदर्शक – अभय कात्यायन, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी।
8. ग्रहलाघवम् – मूल लेखक – गणेश दैवज्ञ, टीकाकार – आचार्य रामचन्द्र पाण्डेय, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी।

